

प्रजातंत्र के होने का अर्थ



किसी भी प्रजातंत्र के लिए चुनाव उसका अभिन्न अंग होते हैं। लेकिन यही अंतिम सत्य नहीं है। इस संस्था का अंतिम सत्य तो जनता और उसके जीवन की अंतर्वस्तु होती है। दुर्भाग्यवश भारत की राजनीतिक प्रक्रिया में राजनैतिक दल, चुनाव के पहले की अपनी कथनी को सत्ता में आने के बाद बदल देते हैं, और इस प्रकार से प्रजातंत्र की अनदेखी की जाती रहती है।

राष्ट्रवाद, धर्मनिरपेक्षता

पिछले पाँच वर्षों में, राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता, दो ऐसे जुमले रहे हैं, जो देश की राजनीति पर छाए रहे हैं। ये दोनों ही तत्व भाजपा और कांग्रेस से जुड़े रहे हैं। भारतीय प्रजातंत्र के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता एक प्रकार का आदर्श नारा है। परन्तु राजनैतिक दलों ने इसे भिन्न स्वरूप में प्रस्तुत करना शुरू कर दिया है। वास्तव में यह चिंतनीय है।

दरअसल, राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता जैसे तत्वों के लिए प्रजातंत्र का होना अनिवार्य नहीं है। ईरान के अंतिम शाह और ईराक में सद्दाम हुसैन के अधीन भी धर्मनिरपेक्षता थी; जबकि ये दोनों ही शासक तानाशाह थे। चीनी गणतंत्र भी इतना राष्ट्रवादी है कि उसके समाजवाद को चीनी विशेषताओं वाला समाजवाद माना जाता है। बहरहाल, वह एक प्रजातंत्र नहीं है। भारत के लिए प्रजातंत्र, राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता से बढ़कर होना चाहिए। लेकिन यह दांव पर लगा हुआ है। इसका अर्थ यह नहीं कि प्रजातंत्र में इन दोनों आदर्शों का स्थान नगण्य है। वास्तव में तो ये तत्व प्रजातंत्र के महत्वपूर्ण भाग हैं।

अगर राष्ट्रवाद पर नजर डालें, तो प्रजातांत्रिक समुदाय बनने के साथ ही अपने राष्ट्र के हितों की रक्षा करना हमारा कर्तव्य बन जाता है। भारत में खतरे दो स्रोतों से आते हैं। भारत से शत्रुता रखने वाले क्षेत्रों में चीन जैसे सत्तावादी शासन हैं। दूसरा, पश्चिमी शक्तियों ने अपने आर्थिक और राजनीतिक हितों को बढ़ावा देने के लिए वैश्विक निकायों पर कब्जा कर लिया है, और इन बहुपक्षीय एजेंसियों के माध्यम से वे भारत के बाजार को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।

दूसरा तत्व धर्मनिरपेक्षता है। सैद्धांतिक रूप से तो किसी प्रजातांत्रिक सरकार के कार्यकलापों में धार्मिक प्रभाव दिखाई नहीं देना चाहिए। वर्तमान भारत में इस तथ्य की प्रासंगिकता को समझना आवश्यक है। इसके लिए अन्य धर्मों के अल्पसंख्यकों की रक्षा की जानी चाहिए।

राजनैतिक दलों के दांव-पेंच

भारतीय समाज में राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता की प्रासंगिकता को स्वीकार करने के लिए राजनैतिक दलों को इन तत्वों के दुरुपयोग करने का काम नहीं करना चाहिए। हमने हाल ही में ऐसे पाँच वर्ष पूरे किए हैं, जिसमें राष्ट्रवाद के जहरीले रूप को निरंकुश छोड़ दिया गया था। भाजपा के हाथों में राष्ट्रवाद और राष्ट्र गौरव का अर्थ ही हिन्दू बहुसंख्यकों का शासन रहा है। यह ऐसा दौर था, जिसने देश को घातक परिणाम दिए। इस दौर ने भारत के जन समूहों में घबराहट व्याप्त कर दी थी। इससे पहले के तीस वर्षों में काँग्रेस ने धर्मनिरपेक्षता का खूब दिखावा किया था, जिसका उदाहरण उच्चतम न्यायालय के शाह बानो मामले के निर्णय में मिलता है। इससे भारत के मुस्लिम समुदाय को घोर निराशा हुई थी। केरल में तो काँग्रेस ने लगातार सांप्रदायिक दलों से गठबंधन कर सरकार चलाई, और धर्मनिरपेक्ष होने की दुहाई भी देती रही।

भारत के अब तक के सभी नेताओं में जवाहर लाल नेहरू ही ऐसे थे, जिन्होंने प्रजातंत्र को सही रूप में समझा था। एक फ्रेंच लेखक के यह पूछे जाने पर कि वे सबसे बड़ी चुनौती किसे मानते हैं, पं. नेहरू ने कहा था कि सही साधनों से एक न्यायसंगत देश का निर्माण करना। एक धार्मिक देश में धर्मनिरपेक्षता की स्थापना करना।” उनके कथन का महत्व इस बात में है कि वे इन चुनौतियों को दूर करना, एक लक्ष्य मानते रहे। उनके लिए यह विचार ‘अच्छे दिन आने वाले हैं’, जैसे प्रचार पर आधारित नहीं था। न ही वे महंत और इमाम से मुलाकातों का ढोल पीटते थे। ब्रिटिश शासन के आखिरी दिनों में नेहरू ने कहा था कि “एक समृद्ध, प्रजातांत्रिक और प्रगतिशील भारत के निर्माण का सुअवसर आया है।”

सही साधनों से न्यायसंगत समाज की स्थापना

पिछले 70 वर्षों में, भारतीय लोकतंत्र का लक्ष्य समृद्धि रहा होगा, परंतु यह बहुमत में कहीं दिखाई नहीं देता। समाज का एक छोटा-सा वर्ग ही समृद्धशाली होता गया है। न केवल धनी वर्ग, बल्कि मध्य वर्ग भी पहले की अपेक्षा समृद्ध हो गया है। बाकी की जनता अभी भी जीविका के लिए संघर्ष कर रही है। इन निर्धनों के लिए न्यायसंगत समाज की परिकल्पना भी दूर की बात है। वास्तव में सही साधनों से न्यायसंगत समाज की स्थापना की जा सकती है। इसके लिए सही नीतियों की आवश्यकता है। इन्हें बनाना राजनैतिक दलों का काम है।

अधिकांश भारतीयों के जीवन के संघर्ष को समाप्त करने के लिए हमें अपनी नीतियों की दिशा को नीचे जाते मानव विकास सूचकांक को ऊपर उठाने की ओर मोड़नी होगी। शिक्षा की गुणवत्ता की कमी के कारण लाखों युवा बेरोजगार हैं। एक सम्मानयुक्त जीविका कमाने के लिए उनका कौशल पर्याप्त नहीं है। इसके लिए दो प्रकार से तैयारी करनी होगी।

(1) शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए समस्त संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग। चुनाव में हम इसी उद्देश्य के लिए तो मतदान करते हैं। लेकिन नेताओं की राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता पर भाषणबाजी खत्म ही नहीं होती। ऐसा लगता है कि सुशासन की पूरी जिम्मेदारी नौकरशाहों पर ही है। ऐसा होने से नौकरशाहों को अलग प्रकार की शक्ति मिल जाती है। वे किसी के प्रति जवाबदेह नहीं रह जाते हैं।

(2) सार्वजनिक नीति का दूसरा उद्देश्य आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाना होना चाहिए। हमारे युवाओं को रोजगार चाहिए। सरकार स्वयं प्रत्यक्ष रूप से रोजगारों का सृजन नहीं कर सकती। परन्तु वह उसके अनुकूल स्थितियां तैयार कर सकती है। ऐसा सार्वजनिक निवेश और मैक्रो इकॉनॉमिक नीति से किया जा सकता है। अपरिपक्व आर्थिक नीतियों ने बेराजगारी को बहुत बढ़ा दिया है। भारतीय राजनीतिक दल इस बात का आरोप नहीं लगा सकते कि उन्हें प्रजातंत्र की मंजिल तक पहुँचने का रास्ता नहीं दिखाया गया था। अगर वे देश को वहाँ ले जाने में असफल रहते हैं, तो इसके लिए वे स्वयं जिम्मेदार होंगे।

‘द हिन्दू’ में प्रकाशित बालाकृष्णन के लेख पर आधारित। 26 मार्च, 2019

